COPYRIGHT

Third Edition. 1937

All copies legitimately sold bear the impression of the University Seal

Note — All the portions of the Hindi Vi
specified to be omitted from the Ba
Course in the University Calendar h
been deleted from the present editio

नोट— हिन्दी विलास के जो अंश इस परीक्षा के क
नहीं थे, वे सब के सब इस संस्करण में निकाल
गये हैं। अतः यह सारी पुस्तक परीक्षा के क
समझनी चाहिये।

PREFACE

The Ratna examination has become, to all intents and purposes, an examination for Hindu girls of tender age. The Board felt the necessity of a poetical selection that would supply the juvenile readers with what is best in Hindi literature, aiming at the same time the amusing element.

The present work is designed to meet this demand. It includes in it only those pieces which possess sterling worth, and are not beyond the depths of the young readers.

The introduction is a brief summary of the Hindi literature. It touches the main currents of each period and brings out the characteristics of the leading poets. Notes are fairly exhaustive.

I should take this opportunity of tendering my thanks to the members of the Board who entrusted me with this work, and to the poets, past as well as present, from whom I have indulgently drawn.

D. A. V. College,
Lahore.
Dated 5th July, 1933

SURYA KANTA.

भूमिका

१

१—उत्तर भारत के विशाल भूखण्ड में गत हजार वर्षों से प्रचलित हिन्दी भाषा का साहित्य, इस देश के धार्मिक तथा नैतिक उत्थान और पतन को जानने का श्रेष्ठ साधन है। भारत की सभ्यता तथा संस्कृति परम्परा की रक्षा करने के कारण हिन्दी साहित्य का गौरव वर्णनातीत है।

२—जीवन के रागात्मक व्यापार को साहित्य कहते हैं। देश और काल में होने वाले परिवर्तनों के साथ साथ जाति के साहित्य में भी परिवर्तन होते रहते हैं। इस दृष्टि से हम हिन्दी साहित्य को चार युगों में बाँट सकते हैं—

(१) वीरगाथा काल सं० १०५० से १५०० तक।

(२) भक्ति काल सं० १५०० से १७०० तक।

(३) रीति काल सं० १७०० से १८५० तक।
(४) गद्य काल सं० १८५० से अब तक।

२

वीरगाथा काल

३—यह युग राजनीतिक उत्थान और पतन का युग था। भारत बहुतर भाग पर विदेशियों का आधिपत्य स्थापित हो चुका लाहौर, देहली, मुलतान तथा अजमेर आदि में मुसलमानों विजय वैजयन्ती फहराने लगी थी। राजपूतों को घरेलू कलह अवकाश न मिलता था। वे स्वयंवरों में एक दूसरे के वि लाहा लेना जानते थे, किन्तु विदेशियों के साथ नहीं अत्यन्त शूर, पराक्रमी तथा आन पर मर मिटने वाले थे, कि उनमें यह गुण उनके अन्तर्विग्रह राजनीतिक अदूरदर्शि तथा पारस्परिक कलह के कारण उन्हीं के बराबर थे।

४—जिस समय उत्तर भारत में घोर अशान्ति तथा अन्ध का आटोप छाया हुआ था, उसी समय यहां अपभ्रंश भा से उत्पन्न होकर हिन्दी साहित्य अपने शैशव में खेल रहा भीषण हलचल तथा घोर अशान्ति के युग में साहित्य सर्वांङ्गीण विकास असम्भव होता है। ऐसे काल में वीरगाथात्मिका कविताओं का जन्म हुआ करती है। हि के आदि युग में भी वीर रस की कविताएँ ही मिलती हैं

५—वीरगाथा काल में इस दान का होना स्वाभाविक था कि

[illegible]

६—[illegible]

३

भक्तिकाल—ज्ञानाश्रयी शाखा

८ वीर [illegible] के पतन के बाद हिन्दी साहित्य में वीर गाथाओं की इति हो गई। [illegible] और

— इस काल की कविता [illegible] के कारण नहीं दी गई।

और पद्मावती के प्रेम रूपक द्वारा जीव और परमात्मा के लोकोत्तर प्रेम की अभिव्यंजना की है। इसके व्यक्त जगत् को अव्यक्त विधि का प्रतिबिम्ब अथवा विकास समझ कर पहले व्यक्त के अगणित नाम रूप भेदों का ऐक्य में समन्वय किया है और पीछे से प्रतिबिम्ब मात्र का बिम्ब के साथ तादात्म्य स्थापित किया है। संसार में एक मात्र प्रेम ही ऐसी वृत्ति है जो भिन्न भिन्न व्यक्तियों में एकता उत्पन्न कर सकती है। जायसी आदि ने इसी प्रेम के द्वारा भेदों का अभेद में समन्वय किया है।

१५—(इ) वस्तुवर्णन। प्रेममार्गी कविता का प्रधान लक्ष्य वस्तु अथवा घटनाओं का वर्णन करना नहीं, प्रत्युत इन वस्तुओं तथा घटनाओं के पीछे विराजने वाले तादात्म्य रूप चरम सत्य का अभिव्यंजन करना है। फलतः ये वस्तु वर्णन में देश को और घटना वर्णन में भूषण की समता नहीं कर पाये।

१६—(ई) भावसंकेतन। कविता का एक ध्येय रति, शोक, उत्साह आदि अभिलषित भावों का समुत्थापन करना है। जायसी ने पद्मावत में रति तथा शोक आदि भावपूर्ण व्याख्यान किया है। सूफी कवियों की दृष्टि लोकोत्तर अनुराग में रंगी होने के कारण अत्यन्त व्यापक तथा मार्मिक है।

१७—(उ) अलंकार। कविता का प्रमुख ध्येय भावचित्रण है न कि भाषा भूषा अथवा अलंकार प्रदर्शन। जायसी आदि ने भाव को प्रधानता देते हुए अलंकारों को यहीं तक अपनाया।

७

रीतिकाल

२५—कबीर आदि सन्तों ने हिन्दू और मुसलमानों की भेद बुद्धि को दूर करके, सरल, सदाचारपूर्ण जीवन व्यतीत करने का उपदेश दिया था। जायसी आदि लौकिक प्रेम को स्वर्गीय बनाने के प्रयासी हुए थे। सूर आदि ने मधुर भावों से भावित कृष्ण काव्य की रचना कर असंख्य हृदयों को हरा बनाया था और तुलसी ने भारत की संस्कृति का बड़े ही व्यापक, मधुर और उदार भाव से अंकित कर हिन्दू जाति का प्रतिनिधित्व प्राप्त किया था। इन भक्तों की कृति में कविता का अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग दोनों समान रूप से विकसित थे। इन कवियों ने भाव को भाव की [illegible] बनाकर [illegible] उपयोग किया है। अलङ्कारों से सहायक का काम लिया है स्वामी का नहीं।

२६—भक्ति के विषय में जो कुछ कहा जा सकता था सूर और तुलसी कह चुके थे। कविता के अन्तरङ्ग का जितना भी अलङ्करण हो सकता था वे कर चुके थे। [illegible] के साहित्यकारों तथा कवियों ने कविता के बहिरङ्ग का [illegible] तथा अलङ्करण किया और नाना प्रकार के [illegible] स्वाभाविक विकास को परिसीमित कर दिया। इन कवियों ने काव्यकला की पुष्टि को अपना [illegible] एक एक अलङ्कार, एक एक नायिका और एक एक [illegible] का विशद विवेचन किया है

... सूर के [illegible] और [illegible] का [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] तथा [illegible] [illegible] का [illegible] किया [illegible] [illegible] में [illegible] और [illegible] [illegible] का [illegible] [illegible] [illegible] का काम है। [illegible] [illegible], [illegible] प्रेम के अतिरिक्त [illegible] का [illegible] [illegible]। [illegible] में [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] भावनाओं को गुदगुदाने के लिये कृष्ण तथा [illegible] की [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] करने लगे।

८—शृंगार तथा सौन्दर्य का समन्वय आदर्श है। [illegible] कवियों ने अपनी कृतियों में [illegible] का [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] का [illegible] [illegible] सौन्दर्य [illegible] के [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] [illegible] ने [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] का [illegible] किया। कबीर की भाषा [illegible] तथा [illegible] थी। [illegible] की भाषा [illegible] [illegible] थी। सूर के 'सागर' में ब्रजभाषा को [illegible] दिया था। तुलसी का अवधी तथा ब्रजभाषा पर पूर्ण अधिकार था। रीतिकालीन कवियों ने ब्रजभाषा में कविता की किन्तु इनकी भाषा में अवधी की कुछ मिली रहती थी। इन्हों ने कहीं कहीं फारसी का भी सहारा लिया है।

जिस [illegible] में वे उससे [illegible] हैं।

३१—बिहारी के हृदय में प्रेम था; किन्तु वह प्रेम भौतिक था, ऐन्द्रिय था। उसकी कविता में "प्रेम की पीर" रहकती है और कभी कभी उसमें दैविकता भी भासने लगती है किन्तु वास्तव में यह प्रेम, 'सत्यं शिवं सुन्दरं' के उस उच्च आदर्श से, जो आत्मा को पवित्र तथा प्रतिबुद्ध बनाता है, कहीं दूर है। यह तो मनुष्य के हृदय का, जो प्रेम का एक मात्र आगार है, और जहाँ यथार्थ प्रेम वेदान्त न रत्न की भाँति [illegible] रहता है, प्रतिबिम्ब मात्र है, विकारमात्र है

३२—रूपमात्र का आगार परम तत्त्व वासनाओं से अतीत है। उसे अलंकारों के भार का [illegible], उस पर रमणियों की कुंचित चितवन का प्रभाव नहीं वही आत्मिक आलोक सौन्दर्य का सार है और औचित्य का आदर्श है। मनुष्य को उसकी ओर ले जाने वाली कविता ही यथार्थ कविता है। कवि के उस धाम में ही मनुष्य की चेष्टाओं की इति श्री है, वही उसके अविरत क्रन्दन का पर्यवसान है बिहारी आदि कला-कवियों को उस धाम के दर्शन न हुए थे। उनकी कविता में सर्वांगीण जीवन की रागिनी नहीं सुन पड़ती। उनकी कृतियों में भौतिक जीवन का आत्मिक जीवन के साथ तादात्म्य नहीं दीख पड़ता। इस युग की कविता में यही बड़ी न्यूनता थी

३३—रीतिमार्गी कवियों में केशवदास, भिखारीदास, भूषण,

३५—राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आदि के उद्योग से सामाजिक, साम्प्रदायिक, राजनीतिक तथा साहित्यिक क्षेत्रों में नये जीवन का उल्लास हुआ और जनता में भव्य शिक्षा तथा दीक्षा की ओर अग्रसर होने के भाव उत्पन्न हुए। प्रतिभाशाली बंगीय कवियों ने संस्कृत तथा अंग्रेजी साहित्य का आश्रय ले अपनी भाषा में सम्मिश्रणात्मक साहित्य उत्पन्न किया था, जिसका पड़ोस में होने के कारण हिन्दी साहित्य पर भरपूर प्रभाव पड़ा। साहित्याकाश में भव्य प्रकाश की किरणें फैल गईं। नवोदित उषा की भाव-भंगी को देख कविता की स्थिरता जाती रही और उसमें तारुण्य की तरंगें दौड़ गईं। उस ने अभिसारिका निरूपण आदि की पुराण भूषा को त्याग देश सेवा तथा जाति सेवा आदि के भावों से अपना कलेवर सजाया।

३६—अब तक कविता ब्रज भाषा में होती थी और उसमें कवित्त तथा सवैया आदि छन्दों का प्रयोग होता था। हिन्दी गद्य ने खड़ी बोली को अपना लिया था किन्तु पद्य में अपनी कोमलता और सरसता के कारण, ब्रजभाषा ही उपयुक्त हो रही थी। नवीन युग के साहित्य में नवीनता आई। ब्रजभाषा का आसन खड़ी बोली ने ले लिया। छन्दों में अनेकरूपता आने लगी। नवीन छन्दों का आविष्कार हुआ। यह सब कुछ हुआ किन्तु इन सब की अपेक्षा कहीं अधिक महत्वशाली बात हुई 'व्याकरण की प्रतिष्ठा'। भारतेन्दु के क्रान्ति

हिन्दी का [illegible] की भाँति इसकी भाषा में संस्कृत का पुट रहता है [illegible] किन्तु [illegible] की भाँति इसकी [illegible] [illegible] होती। यहाँ के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] प्रसिद्ध [illegible] यहाँ मिथिला [illegible] [illegible] विभिन्न रूप से इनके [illegible] करते हैं। इस प्रकार [illegible] दृष्टि से [illegible] [illegible] है। मैथिलियों की दृष्टि में [illegible] की तरह से [illegible] है। इनकी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] का [illegible] ही रहते हैं, [illegible] की [illegible] से [illegible] [illegible] [illegible] है। इनके [illegible] [illegible] में [illegible] का परिचय है, और इनकी 'पदावली' [illegible] का परिचय यहाँ का है। [illegible] '[illegible]' [illegible] [illegible] लिखनी होगी। [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] के किसी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हुई है

१८—यहाँ मिथिला [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] की [illegible] दृष्टि से [illegible] का [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] '[illegible]' के [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] प्रकृति के [illegible] और [illegible] [illegible] में [illegible]

प्रसाद पांडेय, ठाकुर गोपालशरणसिंह और सीमती सुभद्रा-कुमारी चौहान आदि के नाम उल्लेख योग्य हैं।

४४—छायावाद—हिन्दी की काव्यधारा का सामान्य परिचय ऊपर दिया गया है। अब कुछ काल से हिन्दी में रहस्यवाद अथवा छायावाद की कविता के दर्शन हुए हैं। इस विषय में हिन्दी साहित्य सौयुत रवीन्द्रनाथ जी का ऋणी है।

४५—बाबू जयशंकर प्रसाद पहले ही से रहस्यवाद की कविता कर रहे हैं। उनकी कविता में नूतनता कवियों का टच पाया जाता है और अंग्रेजी कविता की पालिश झलकती है। इनकी कविता में संस्कृत के शब्द अधिक रहते हैं। अद्वैतवाद का आधार लेकर रहस्य का व्याख्यान करने वाले हिन्दी कवियों में पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी श्रेष्ठ हैं। इन्हों ने तथा पंडित सुमित्रानन्दन पन्त ने पश्चिम से बहुत कुछ सीखा है और रवीन्द्रनाथ तथा वैष्णव कवियों से सहायता ली है। "सामूहिक दृष्टि से देखने पर छायावादी कवियों में श्री सुमित्रानन्दन पन्त की रचनाएं सर्व श्रेष्ठ ठहरती हैं।" इनकी उड़ान ऊंची है, इनकी वेदना सूक्ष्म तथा मार्मिक है, इनके शब्दों में आत्मानुभूति की झलक है और इनकी रचना में चरम सौन्दर्य का भव्य उन्मेष है। पं० मोहन लाल महतो की रचना में भी रहस्य का थोड़ा चमत्कार है।

४६—अब तक हमने वर्तमान हिन्दी कवियों पर मूलक रूप से

करेंगे कि इन दिनों का हिन्दी समुद्र किसी ऐसे आन्दोलन से आलोड़ित भी नहीं हुआ जिसका सांस्कृतिक महत्व फ्रांस की राज्यक्रांति, इंगलैण्ड के रोमांसपेरियन युग अथवा रूस के राज्य विप्लव से किया जा सके। समाज की इन उद्दण्ड क्रांतियों में समाज के युगयुगागत भावों तथा सिद्धान्तों का विचारात्मक संघर्ष होता है। साधारणतया ये समय अकस्मात् उदित होने वाली क्रांतियों में इस संघर्ष का वाचालक प्रकाशन होता है। भारत में असहयोग तथा खिलाफत जैसे आन्दोलन हुए फलतः यहां कवि श्रेष्ठ रवीन्द्र तथा ऋषिवर गान्धी के दर्शन हुए। अभी हिन्दी कवियों को समाज ने कोई ऐसे नये विचार अथवा वेदनामयी भावनाएं नहीं दीं जिनके आधार पर वे किसी प्रकार की विश्वजनीन कविता का निर्माण कर सकते। जिस अकर्मण्य संतोष के साथ हम अपने पुराने धार्मिक विश्वासों और संकीर्ण सामाजिक संस्कारों में अपना जीवन घसीटते आए हैं उसी शिथिलता के साथ हमारे जीवन व्याख्याता कवियों ने प्राचीन काव्यकला के आधार पर निर्जीव कविताएं की हैं। जिस हिचक के साथ हम ने नवीन संस्कृति तथा प्रगति को अपनाया है उसी झिझक के साथ उन्हों ने नये विषयों तथा शैलियों का आंचल पकड़ा है। अतीत का अन्धप्रेम हम से अब तक नहीं छूटा है। वर्तमान का यथार्थ आदर हम ने अब तक नहीं समझा है। भविष्य का सर्वाङ्गीण चित्र हमारे सम्मुख अब तक नहीं आया है। इन कठिनाइयों के निविड़ कानन में से

शुद्धि पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९.	८	अदनि परवनि	अवनिप रंवनि
१०.	११.	दान्हा	दीन्हा
१०.	१२.	अवतंहु	अवतरंहु
१७.	१३.	मन	सन
२२.	१.	कु-नि	कुमति
२२.	२०.	हेना	देना
२३.	[illegible]	तुन	वनु
२३.	१४.	करतर हेउँ	करत रहेउ
५४.	३.	पोत	मात
५७	८.	परखा	पारखा
६७.	२०.	देख्या	दख्या
८२.	३.	अपित	अपित
८३.	१०.	भग	भंग
८७.	६.	तन	धन
८७.	१२.	टेल	पेलि

विषय-सूची

प्रथम तरङ्ग

विषय			पृष्ठ
१. तुलसीदास			
परशुराम-लक्ष्मण-सम्वाद	...	...	३
मन्थरा-कैकेयी-सम्वाद	...	..	१३
दशरथ-कैकेयी-सम्वाद	...	...	२०
राम के विनीत वचन	...	...	२७
राम-सीता-सम्वाद	...	...	२९
भरतागमन के समय लक्ष्मण का क्रोध और श्रीराम का उन्हें समझाना	...	...	३४
२. कबीर			
वैराग्य में अनुराग	...	...	४१
प्रोत्साहन	...	...	४३
सेवक और दास का अङ्ग	...	...	४४
सूरमा का अङ्ग	...	...	४६
चेतावनी का अङ्ग	...	...	४९
शब्द का अङ्ग	...	...	५३

तृतीय तरङ्ग

विषय			पृष्ठ
८. हरिचन्द्र			
गङ्गावर्णन	...	...	१२१
कालिन्दी सुषमा	...	...	१२३
देश भक्त के आंसू	...	...	१२६
कोमल भावना	...	...	१२८
निराशा	...	...	१२९
सूक्ति-सुमन	...	...	१३२
लक्ष्मी	...	...	१३४
गुरुघण्टा	...	...	१३५
शारदा सुषमा		...	१३६
सेवाधर्म	...	...	१३८
पुराना उद्यान	...	...	१३९
उद्बोधन	...	...	१४८
९. बदरीनारायण चौधरी			
बिछुरी भारत	...	...	१४१

विषय			पृ०
७. प्रतापनारायण मिश्र			
जन्म के ठगिया	...	...	१४४
अपने करम आपने संगी	...	...	१४६
८. नाथूराम शंकर शर्मा			
मङ्गलकामना	..	...	१४८
शंकर मिलन	...	...	१५१
रसविहीन के लिये कविता वृथा है ..		..	१५२
अन्ध जगत्		..	१५३
पितृदेव क्या थे और मैं क्या हूँ ...			१५४
आत्म-बोध	..		१६०
९. श्रीधर पाठक			
उजड़ा गाँव	...	..	१६३
जादूभरी थैली	.	...	१६५
स्वर्गीय वीणा		..	१६७
ओ घन श्याम !		...	१६९
१०. बालमुकुन्द गुप्त			
श्रीराम स्तोत्र		...	१७२

विषय			पृष्ठ
१४. अयोध्यासिंह उपाध्याय			
वीरवर सौमित्र	...	..	१७५
फूल और कांटा	...	...	१८१
आंसू	...	...	१८३
१५. जगन्नाथदास रत्नाकर			
हरिश्चन्द्र परीक्षा	..		१८६
१६. देवीदास पूर्ण			
मृत्युञ्जय	...	...	१९३
मन बन्दर	...	...	१९७
७. रामचरित उपाध्याय			
वीरवचनावलि	...	...	१५८
विधि विडम्बना	.	...	२००
८. अमीर अली			
अन्योक्ति सुमन	..	...	२०३
९. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही-त्रिशूल'			
सत्य	...	...	२०६
१०. रामचन्द्र शुक्ल			
अद्भुत की आह	...	...	२०९

हिन्दीविलास

प्रथम तरंग

तुलसीदास रामायण

सुनत लखन के बचन कठोरा। परसु सुधारि धरेउ कर घोरा॥
अब जनि देइ दोसु मोहि लोगू। कटु-बादी बालक बध जोगू॥
बाल बिलोकि बहुत मैं बाँचा। अब यह मरनहार भा साँचा॥
कौसिक कहा छमिअ अपराधू। बाल दोष गुन गनहिं न साधू॥
कर कुठार मैं अकरुन कोही। आगे अपराधी गुरु द्रोही॥
उतर देत छोड़उँ बिनु मारे। केवल कौसिक सील तुम्हारे॥
न त एहि काटि कुठार कठोरें। गुरहि उरिन होतेउँ श्रम थोरें॥

गाधि-सूनु कह हृदय हँसि मुनिहि हरिअरइ सूझ।
अयमय खाँड़ न ऊखमय अजहुँ न बूझ अबूझ॥

कहेउ लखन मुनि सील तुम्हारा। को नहिं जान बिदित संसारा॥
माता पितहि उरिन भये नीकें। गुरहित रहा सोच बड़ जी कें॥
सो ऋनु हमरेहि माथे काढ़ा। दिन चलि गयउ ब्याज बड़ बाढ़ा॥
अब आनिअ ब्यवहरिआ बोली। तुरत देउँ मैं थैली खोली॥
सुनि कटुबचन कुठार सुधारा। हाय हाय सब सभा पुकारा॥
भृगुबर परसु देखावहु मोही। बिप्र बिचारि बचउँ नृप द्रोही॥
मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े। द्विज देवता घरहि के बाढ़े॥
अनुचित कहि सब लोग पुकारे। रघुपति सैनहिं लखन निवारे॥

लखन उतर आहुति सरिस भृगुबर कोप कृसानु।
बढ़त देखि जल सम बचन बोले रघु-कुल-भानु॥

दूध-पूत न कहिअ न कोहू॥

जौं पै प्रभु प्रभाउ कछु जाना। तौकि बराबरि करइ अयाना॥
जौं लरिका कछु अचगरि करहीं। गुरु पितु मातु मोद मन भरहीं॥
करिय कृपा सिसु सेवक जानी। तुम्ह सम सील धीर मुनि ज्ञानी॥
राम बचन सुनि कछुक जुड़ाने। कहि कछु लषन बहुरि मुसुकाने॥
हँसत देखि नख सिख रिस ब्यापी। राम तोर भ्राता बड़ पापी॥
गौर शरीर स्याम मन माहीं। कालकूट-मुख पयमुख नाहीं॥
सहज टेढ़ अनुहरइ न ताहीं। नीच मीच सम देख न मोही॥

लषन कहेउ हँसि सुनहु मुनि क्रोध पाप कर मूल।
जेहि बस जन अनुचित करहिं करहिं बिस्व प्रतिकूल॥

मैं तुम्हार अनुचर मुनि-राया। परिहरि कोप करिय अब दाया॥
टूट चाप नहिं जुरहि रिसाने। बैठिय होइहहिं पाय पिराने॥
जौं अति प्रिय तौ करिय उपाई। जोरिय कोउ बड़ गुनी बोलाई॥
बोलत लषनहिं जनक डराहीं। मष्ट करहु अनुचित भल नाहीं॥
थरथर कापहिं पुर-नर नारी। छोट कुमार खोट बड़ भारी॥
भृगुपति सुनि सुनि निर्भय बानी। रिस तन जरइ होइ बलहानी॥
बोले रामहि देइ निहारी। बचहु बिचारि बंधु लघु तोरी॥
मन मलीन तनु सुन्दर कैसे। बिष रस भरा कनक घट जैसे॥

सुनि लछमन बिहँसे बहोरि नयन तरेरे राम।
गुरु समीप गवन सकुचि परिहरि बानी बाम॥

अति बिनीत मृदु सीतल बानी। बोले राम जोरि जुग पानी॥

सुनहु नाथ तुम्ह सहज सुजाना। बालक बचन करिय नहिं काना॥
बररै बालक एक सुभाऊ। इन्हहि न सन्त बिदूषहिं काऊ॥
तेहि नाहीं कछु काज बिगारा। अपराधी मैं नाथ तुम्हारा॥
कृपा कोप बध बंध गोसाईं। मो पर करिय दास की नाईं॥
कहिय बेगि जेहि बिधि रिस जाई। मुनि नायक सोइ करउँ उपाई॥
कह मुनि राम जाय रिस कैसे। अजहुँ अनुज तव चितव अनैसे॥
एहि के कंठ कुठार न दीन्हा। तो मैं काह कोप करि कीन्हा॥

गर्भ स्रवहिं अवनि परंवनि सुनि कुठार गति घोर।
परसु अछत देखउँ जियत बैरी भूप-किसोर॥

बहइ न हाथ दहइ रिस छाती। भा कुठार कुंठित नृप घाती॥
भयेउ बाम बिधि फिरेउ सुभाऊ। मोरे हृदय कृपा कसि काऊ॥
आजु दैव दुख दुसह सहावा। सुनि सौमित्र बहुरि सिरु नावा॥
बाहु कृपा मूरति अनुकूला। बोलत बचन झरत जनु फूला॥
जौ पै कृपा जरहिं मुनि गाता। क्रोध भये तन राखु बिधाता॥
देखु जनक हठि बालक एहू। कीन्ह चहत जड जमपुर गेहू॥
बेगि करहु किन आंखिन ओटा। देखत छोट खोट नृप ढोटा॥
बिहसे लषन कहा मुनि पाहीं। मूंदे आंखि कतहुँ कोउ नाहीं॥

परशुराम तब राम प्रति बोले उर अति क्रोध।
सम्भु सरासन तोरि सठ करसि हमार प्रबोध॥

बन्धु कहइ कटु संमत तोरे। तू छल बिनय करसि कर जोरे॥

जय सुर-विप्र-धेनु-हित-कारी । जय मद-मोह-कोह-भ्रमहारी ॥
विनय सील करुना गुन सागर । जयति वचन-रचना अति नागर ॥
सेवक सुखद सुभग सब अङ्गा । जय सरीर छवि कोटि अनङ्गा ॥
करउँ काह मुख एक प्रसंसा । जय महेस-मन-मानस-हंसा ॥
अनुचित बहुत कहेउँ अज्ञाना । छमहु छमा मन्दिर दोउ भ्राता ॥
कहि जय जय जय रघु-कुल केतू । भृगुपति गये बनहिं तप हेतू ॥
अपभय कुटिल महीप डेराने । जहँ तहँ कायर गवहिं पराने ॥

देवन दीन्ही दुन्दुभी प्रभु पर बरषहिं फूल ।
हरषे पुर नर नारि सब मिटा मोह भय सूल ॥

* * *

मन्थरा-कैकेयी-सम्वाद

बाजहिं बाजन बिबिध बिधाना । पुर प्रमोद नहिं जाइ बखाना ॥
भरत आगमनु सकल मनावहिं । आवहिं बेगि नयन फल पावहिं ॥
हाट बाट घर गली अथाई । कहहिं परसपर लोग लुगाई ॥
कालि लगन भलि केतिक बारा । पूजिहि बिधि अभिलाषु हमारा ॥
कनक-सिंहासन सीय समेता । बैठहिं राम होइ चित चेता ॥
सकल कहहिं कब होइहि काली । बिघन मनावहिं देव कुचाली ॥
तिन्हहि सुहाइ न अवध बधावा । चोरहि चांदनि राति न भावा ॥
सारद बोलि बिनय सुर करहीं । बारहिं बार पांय लै परहीं ॥
बिपति हमारि बिलोकि बड़ि मातु करिय सोइ आजु ।
राम जाहिं बन राज तजि होइ सकल सुरकाजु ॥

[illegible]

कुबरी करि कबूलि कैकेई। कपटछुरी उरपाहन देई॥
लखइ न रानि निकट दुखु कैसे। चरइ हरित तृन बलिपसु जैसे॥
सुनत बात मृदु अन्त कठोरी। देवि मनहु मधु माहुर घोरी॥
कहइ चेरि सुधि अहइ कि नाहीं। स्वामिनि कहिहु कथा मोहि पाहीं॥
दुइ बरदान भूप सन थाती। मागहु आजु जुड़ावहु छाती॥
सुतहि राजु रामहि बनबासू। देहु लेहु सब सवति हुलासू॥
भूपति राम सपथ जब करई। सब मागहु जेहि बचत न टरई॥
होइ अकाजु आजु निसि बीते। बचनु मोर प्रिय मानेहु जी ते॥

बड़ कुघातु करि पातकिनि कहेसि कोपगृह जाहु।
काजु सँवारेहु सजग सब सहसा जनि पतिआहु॥

कुबरिहि रानि प्रानप्रिय जानी। बार बार बड़ि बुद्धि बखानी॥
तोहि सम हितु न मोर संसारा। बहे जात कर भयसि अधारा॥
जौ बिधि पुरब मनोरथु काली। करउ तोहि चख पूतरि आली॥
बहुबिधि चेरिहि आदरु देई। कोपभवन गवनी कैकेई॥

❀ ❀ ❀

तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी। सुन्दरि समुझायेहु मृदु बानी॥
कहउं सुभाय सपथ सत मोही। सुमुखि मातु हित राखउँ तोही॥
गुरु श्रुति सम्मत धरम फल पाइअ बिनहिं कलेस॥
हठ बस सब संकट सहे गालव नहुष नरेस॥
मैं पुनि करि प्रमान पितु बानी। बेगि फिरब सुनु सुमुखि सयानी॥
दिवस जात नहिं लागिहि बारा। सुन्दरि सिखवन सुनहु हमारा॥
जौं हठ करहु प्रेम बस बामा। तौ तुम्ह दुख पाउब परिनामा॥
कानन कठिन भयंकर भारी। घोर घाम हिम बारि बयारी॥
कुस कंटक मग काँकर नाना। चलब पयादेहिं बिनु पदत्राना॥
चरन कमल मृदु मंजु तुम्हारे। मारग अगम भूमिधर भारे॥
कन्दर खोह नदी नद नारे। अगम अगाध न जाहिं निहारे॥
भालु बाघ बृक केहरि नागा। करहिं नाद सुनि धीरज भागा॥
भूमि सयन बलकल बसन असन कन्द फल मूल।
तेहि सुख सब दिन मिलहि समय समय अनुकूल॥
नर अहार रजनीचर करहीं। कपट बेष बिधि कोटिक करहीं॥
लागइ अति पहार कर पानी। बिपिन बिपति नहिं जाइ बखानी॥
ब्याल कराल बिहंग बन घोरा। निसिचर निकर नारि नर चोरा॥
डरपहिं धीर गहन सुधि आये। मृगलोचनि तुम्ह मोरु सुभाये॥
हंस गवनि तुम्ह नहिं बन जोगू। सुनि अपजसु मोहिं देइहि लोगू॥
मानस सलिल सुधा प्रतिपाला। जियइ कि लवन पयोधि मराली॥

आखिर यह तन खाक मिलैगा,
कहा फिरत मगरूरो में।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो,
साहिब मिले सबूरी में॥

कुल खोये कुल ऊबरै कुल राखे कुल जाय।
नाम अकुल को मेटिया सब कुल गया बिलाय॥
कबिरा बेड़ा जरजरा फूटे छेद हजार।
हरुए हरुए तरि गये बूड़े जिन सर भार॥
मैं भँवरा तोहि बरजिया बन बन बास न लेय।
अटकैगा फूहूँ बेल से तड़पि तड़पि जिय देय॥
बाड़ी के बिच भँवर था कलियां लेता बास।
सो तो भँवरा उड़ि गया तजि बाड़ी की आस॥
भय बिनु भाव न ऊपजै भय बिनु होय न प्रीति।
जब हिरदे से भय गया मिटी सकल रस रीति॥
यह जग काठी काठ की बहूँ दिसि लागी आगि।
भीतर रहा सो जरि मुआ साधू उबरे भागि॥
यहि बिरिया तो फिर नहीं मन में देख बिचार।
आया लाभ के कारनै जनम जुआ मत हार॥

❀ ❀ ❀

शब्द का अंग

सीखै सुनै विचारि ले ताहि सब्द सुख देय।
बिना समझ सब्दै गहै कछू न लाहा लेय॥
सब्दहि मारै मरि गये सब्दहि वेदिया राज।
जिन जिन सब्द पिछानिया सरिया तिन का काज॥
सब्द हमार हम सब्द के सब्द हमारा रूप।
जो चाहै दीदार को परख सब्द का रूप।
काल फिरै सिर उपरै जीवहि नजर न आइ।
कहै कबीर गुरु सब्द गहि अमर भये अब जाइ॥
सब्द बराबर धन नहीं जो कोई जानै मोल।
हीरा तो दामों मिलै सब्दहि मोल न तोल॥

सीतल सब्द उचारिये अहं आनिये नाहिं।
तेरा प्रीतम तुझ में सत्रु भी तुझ माहिं॥
वह मोती मत जानियो पुहै पोत के साथ।
यह तो माती सब्द का बेधि रहा सब गात॥
जंत्र मंत्र सब झूठ हैं मत भरमो जग कोय।
सार सब्द जाने बिना कागा हंस न होय॥
सत्त सब्द निज जानिके जिन कीन्हा परतीत।
काग कुमति तजि हंस ह्वै चले सो भव जल जीति॥

* * *

कहै कबीर पुकारि कै कोई संत विवेकी होय।
जामें सब्द विवेक है छत्र धनी है सोय॥
जीव जंतु जलहर बसै गये विवेक जो मूल।
जल के जलचर यों कहैं हम उडगन सम तूल॥

निष्कर्ष

रहना नहिं देस बिराना है।
यह संसार कागद की पुड़िया,
बूँद पड़े घुल जाना है।
यह संसार काँट की बाड़ी,
उलझ पुलझ कर मर जाना है।।
यह संसार झाड़ औ झाँखर,
आग लगे बरि जाना है।
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
सत गुरु नाम ठिकाना है।।

[illegible]

[illegible]

(सूरदास)

बाल लीला

घुटुरुन चलत रेनु तन मंडित, मुख दधि लेप किए।
चारु कपोल लोल लोचन, गोरोचन तिलक दिए॥
लट लटकनि मनु मत्त मधुपगन, मादक मधुहि पिए।
कठुला कंठ बज्र केहरि नख, राजत रुचिर हिए॥
धन्य सूर एकौ पल इहि सुख, का सत कल्प जिए।

[illegible]
[illegible],
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

अलि अबलौ फिरि आइ ॥
नील स्वेत पर पीत लाल मणि,
लटकत भाल हराइ ।
शनि गुरु असुर देव गुरु मिलि,
मानौं भौम सहित समुदाइ ॥
दूध दन्त द्युति कहि न जाय अति,
अद्भुत एक उपमाइ ।
किलकत हँसत दुरत प्रगटत,
मानों घन में बिज्जु छटाइ ॥
खण्डित बचन देत पूरन सुख,
अलप जलप जल पाइ ।
घुटुरुन चलत रेणु तनु मण्डित,
सूरदास बलि जाइ ॥
गहे अंगुरिया सुवन की,
नन्द चलन सिखावत ॥
अरबराय गिरि परत हैं,
कर टेकि उठावत ॥
बार बार बकि श्याम सों,
कछु बोल बुलावत ।

खेलनि दूरि जात कत कान्हा।
आजु सुन्यों मैं हाऊ आयो,
तुम नहिं जानत नान्हा॥
यक लरिका अबहीं भजि आयो,
रोवत देख्यो ताहि।
कान तोरि यह लेत सबनि को,
लरिका जानत जाहि॥
चलो न बेगि सबेरे जैये,
भाजि आपने धाम।
सूर स्याम यह बात सुनत ही,
बोलि लिये बलराम॥

दूरि खेलन जनि जाउ ललन,
मेरे हाऊ आये हैं।
तब हँसि बोलि कान्ह रि मैया,
इनको किन्हें पठाये हैं॥
यमुना के तट धेनु चरावत,
जहाँ सघन बन झाऊ।
पैठि पताल ब्याल गहि नाथ्यो,
तहाँ न देखे हाऊ॥

अब हरषत सुनि सुनि ये बातें,
कहत हँसत बलदाऊ।
सप्त रसातल शेषासन रहि,
तव की सुरत भुलाऊ॥
चार वेद लै गयो शंख सुर,
जल में रहेऊ लुकाऊ।
मीन रूप धरिके जब मारेऊ,
तबहिं रहे कहँ हाऊ॥
मथि समुद्र सुर असुरन के हित,
मन्दर जलहि खसाऊ॥
कमठरूप धरि धरनि पीठ पर,
सुख पायो सुरराऊ॥
जब हरणाक्ष युद्ध अभिलाषे,
मन में अति गरवाऊ।
धरि वाराह रूप रिपु मारेउ,
लै क्षिति दन्त अगाऊ॥
विकट रूप अवतार धरेउ जब,
सो प्रह्लाद बताऊ।
धरि नृसिंह जब असुर विदारेउ,
तहां न देख्या हाऊ॥

गोवर्द्धन लीला

प्रथमहि देउँ गिरिहि बहाय।
बज्रघातनि करौं चूरन,
देउ धरनि बिलाय॥
मेरि इन महिमा न जानी,
प्रगट देउ दिखाय।
जल बरषि ब्रज धाइ डारौं,
लाग देउ बहाय॥
खात खेलत रहे नीके,
करि उपाधि बनाय।
बरष दिन मोहि देत पूजा,

दई सोउ मिटाय ॥
कोप करि सुरराज लीन्हे,
प्रबल मेघ बुलाय ।
रिस सहित सुरपति कहत पुनि,
परौ ब्रज पर धाय ॥
सुनहु सूर कहत हैं मघवा,
बेगि परौ महराय ॥

बरषि बरषि सब हारे बादर ।
ब्रज के लोगनि धोय बहावहु,
इन्द्र हमहि करि आदर ॥
कहा जाय कैहैं प्रभु आगे,
करि हैं बहुत निरादर ।
हम बर्षत बर्षत जल सोखत,
ब्रजबासी सब सादर ॥
पुनि रिसि करत प्रलय जल बर्षत,
कहत भये सब कादर ।
सूर गाय गोसुत सब राख्यो,
गिरिवरधर ब्रज नागर ॥

वृन्दावन प्रवेश शोभा

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

जबै रथ भयो दृष्टि अगोचर,
लोचन अति अकुलात ॥
सबै अजान भई यहि औसर,
अति ढिग गहि सुत मात ।
सूरदास स्वामी के बिछुरे,
कौड़ी भरि न बिकात ॥

नीके रहिये यशोदा मैया ।
आवेंगे दिन चार पांच में,
हम हलधर दोउ भैया ॥
बंशी बेणु बिषान देखियो,
और अबेर सबेरो ।
लै जिनि जाय चोराय राधिका,
कछू खिलौना मेरो ॥
जा दिन ते हम तुम ते बिछुरे,
कोहु न कहै कन्हैया ।
[illegible] समय उठि कियो न कलेऊ,
[illegible] पियो न[illegible]या ॥
कहौं कछु [illegible]ये,

जदं रथ भयो दृष्टि अगोचर,
लोचन अति अकुलात ॥
सदै सजान भई यहि औसर,
अति दिग नहि सुत मात ।
सूरदास स्वामी के बिछुरे,
कौड़ी भरि न बिकात ॥

नीके रहियें यशोदा मैया ।
आवेंगे दिन चार पांच में,
हम हलधर दोउ भैया ॥
बंशी बेणु बिषान देखियो,
और अबेर सबेरो ।
लै जिनि जाय चोराय राधिका,
कछू खिलौना मेरो ॥
जा दिन ते हम तुम ते बिछुरे,
कोहु न कहै कन्हैया ।
प्रात समय उठि कियो न कलेऊ,
सांझि पियो नहिं मैया ॥
कहा कहौं कछु कहत न आवे,
दसुमति जेतो दुख पायो ।

चारिहु दिवस आइ सुख दीजै,
सूर पठुनई सूवर ॥

अब नन्द गइयां लेहु सम्हार।
हम तो तुम्हरे आन परगट,
गौ चराइ दिन चार॥
दूध दधि सब चोर खायो,
तुम जो कियो प्रतिपार।
सूर के प्रभु चले ब्रज तजि,
कपट काछ फार॥

पाछेहि चितवत मेरे लोचन,
आगे पथ न पाइ।
मन हर लियो माधुरी मूरति,
कहा करौं ब्रज जाइ॥
पवन न भई पताका अम्बर,
भई न रथ को अङ्ग।
रेनु न भई चरण लपटावी,
जाति वहां लौ सङ्ग।
केहि विधि कर कैसे सजनि करि,

कब जु मिलैं गोपाल।
सूरदास प्रभु पठै मधुपुरी,
सुरधि परीं ब्रज बाल॥

ऊधो हुतो जननि सों मिलियो,
अरु कुसलात कहोगे।
बाबा नन्दहि पालागन कहि,
पुनि पुनि चरण गहोगे॥
जो दिन ते मधुबन हम आये,
सुधि नाहिं तुम लीन्हीं।
दै दै सौंह करोगे हितकरि,
कहा निठुराई कीन्हीं॥
यह कहो बलराम स्याम अब,
आवेंगे दोऊ भाई।
सूर कर्म की रेख मिटे नहिं,
यहै कहो बदुराई॥

गोपालहि बारे ही की टेव।
जानति नहीं कहाँ ते सीखे,
मोरो की छल छेव॥

रथ कछु दूध दह्यो लै खाते,
फिरि रहती हौं पानि।
कैसे सही परत है मो पै,
मन माणिक की हानि॥

ऊधौ नन्दनँदन सो कहियो,
राजनीति समुझाइ।
राजहु भये तजत नहिं लोभहिं,
गुप्त नहीं यदुराइ॥
बुद्धि विवेक अरु वचन चातुरी,
पहिले लई चुराई।
सूरदास प्रभु के गुण ऐसे,
कासों कहिये जाई॥

फिरि फिरि कहा सिखावत मौन।
वचन दुसह लागत अलि तेरे,
ज्यो पजरे पर लौन॥
सींगी मुद्रा भस्म अधारी,
अरु आराधन पौन।
हम अबला अहीर शठ मधुकर,

विनय पत्रिका

काहू के कुल नाहिं विचारत।
अविगति की गति कहौं कौन सो पतित सबन को तारत॥
कौन जाति को पांति विदुर की जिनकों प्रभु व्योहारत।
भोजन करत तुष्टि पर उनके राजमान पद टारत॥
ओछे जन्म कर्म के ओछे ओछे ही बोलावत।
अनत सहाय सूर के प्रभु की भक्त हेतु पुनि आवत॥
गोविन्द प्रीति सबन की मानत।
जो जेहि भाय करै जन सेवा अन्तर की गति जानत॥
बेर चाखि कटु तजि लै मीठे भिलड़ी दीने जाय।

जूठन की कछु शंक न कीन्ही भक्त हिये सद्भाव ॥
सज्जन भक्त मीत हितकारी श्याम विदुर के आये।
प्रेमहि विकल विदुर अपित प्रभु कदली छिलका खाये ॥
कौरव काज चले ऋषि आपुन शाक के पत्र अघाये।
सूरदास करुणा निधान प्रभु युग युग भक्त बढ़ाये ॥

अब हौं नाच्यौ बहुत गोपाल।

काम क्रोध को पहिरि चोलना कंठ विषय की माल ॥
महामोह के नूपुर बाजत निन्दा शब्द रसाल।
भरम भयो मन भयो पखावज चलत असंगत चाल ॥
तृष्णा नाद करति घट भीतर नाना विधि दै ताल।
माया को कटि फेंटा बांध्यो लोभ तिलक दिया भाल ॥
कोटिक कला काछि दिखराई जल थल सुधि नहिं काल।
सूरदास की सबै अविद्या दूरि करहु नंद लाल ॥

कृपा अब कीजिये बलि जाउं।

नाहिन मेरे अनत कहूं अब पद अम्बुज बिन ठाउं ॥
हौं अपुनी अकृती अपराधी सम्मुख होत लजाउं।
तुम कृपाल करुणानिधि केशव अधम उधारण नाउं ॥
काके द्वार जाय हौं ठाढ़ो देखत काहि सुहाउं।
अशरण शरण विरद व्यापक तुव हौं कुटिल काम सुभाउं ॥
कलुषी परम मलीन दुष्ट हौं सेत्यौं सो न छिकाउं।

सूर पतित पावन पद अम्बुज पारस कहौ परसाउँ ॥

नाथ जू अब के मोहिं उबारो ।

पतितन में बिख्यात पतित हौं पावन नाम तुम्हारो ॥

बड़े पतित नाहिन पासंगू अजामील को हौं जु बिचारो ।

भाजे नरक नाउँ मेरो सुनि भजन दियो हठि तारो ॥

छुद्र पतित तुम तारे रमापति अब न करो जिय गारो ।

सूरदास सांचो तुव माने जो होय मन निस्तारो ॥

छांटि मन हरि बिमुखन को संग ।

कहा भयो पय पान कराये बिष नहिं तजत भुवंग ॥

जाके संग कुबुद्धी उपजै परत भजन में भंग ।

काम क्रोध मद लोभ मोह में निशि दिन रहत उमंग ॥

कागहिं कहा कपूर खवाये स्वान न्हवाये गंग ।

खर को कहा अरगजा लेपन मरकट भूषण अंग ॥

पाहन पतित बाण नहिं भेदत रीतो करत निषंग ।

सूरदास खल काली कामरि चढ़त न दूजो रंग ॥

सबै दिन एक से नहिं जात ।

सुमिरन भगति हेतु करि हरि की जो लगि तन कुशलात ॥

कबहुँक कमला चपल पाय कै टेढ़ेइ टेढ़े जात ।

कबहुँक मग मग धूरि टटोरत भोजन को बिलखात ॥

बालापन खेलत ही खोयो भक्ति करत अरसात ।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

जब इन हंस तजी यह काया प्रेत प्रेत कहि भागी ॥
या विधि को व्योपार बन्यो जग तासों नेह लगायो ।
सूरदास भगवन्त भजन बिन नाहक जन्म गँवायो ॥

अब मैं जानी देह बुढ़ानी ।
शीश पांव धरि कह्यो न मानै तन की दशा सिरानी ॥
आन कहत आनै कहि आवत नयन नाक बहै पानी ।
मिटि गई चमक दमक अङ्ग अङ्ग की गई जु मति हिरानी ॥
नाहिं रही कछु सुधि तन मन की ह्वै है बात बिरानी ।
सूरदास प्रभु अबहिं चेत ले भज ले शारंग पानी ॥

* * *

(नरोत्तमदास)

सुदामा चरित

लोचनकमल दुखमोचन तिलक भाल,
श्रवणन कुंडल मुकुट धरे माथ हैं।
ओढ़े पीत बसन गले में बैजयन्ती माला,
शंख चक्र गदा और पद्म लिये हाथ हैं॥
कहत नरोत्तम संदीपन गुरु के पास,
गुरु ही कहत हम पढ़े एक साथ हैं।
द्वारका के गये हरि दारिद हरेंगे पिय,
द्वारका के नाथ वे अनाथन के नाथ हैं॥१॥
विप्रन के हैं सगरे जग का तिय,
ताको कहा अब देति है मिच्छा।

जो पै दरिद्र ललाट लिख्यो,
ता पै काहू के मेटे न जात अजानो ॥४॥
फाटे पट टूटी छानि खायो भीख माँगि आनि,
बिना गये बिमुख रहत देव पित्रई ।
वे हैं दीनबन्धु दुखी देख के दयालु ह्वै हैं,
दे हैं कछु भलो सो हौं जानत अगत्रई ॥
द्वारका लौं जात पिय केतौ अलसात तुम,
काहे को लजात भई कौन सी बिचित्रई ।
जा पै सब जन्मये दरिद्र ही गनाये तो पै,
कौन काज आइ है कृपानिधि की मित्रई ॥५॥
मैं तो कही नीकी गुन बरात हित हीं की बह,
रीति मित्रई की मित प्रीत सरसाइये ।
चित के मिले तें बित चाहिये परसपर,
मित्र को ते जंइये तो आपहू जिमाइये ।
वे हैं महाराज जोरि बैठत समाज भूप,
तहाँ वह रूप जाय कहा सकुचाइये ।
दुख सुख सब दिन काटे हो बनेगो भूल,
बिपति परे पै द्वार मित्र के न जाइये ॥६॥
द्वारका जाहु जू द्वारका जाहु जू,
आठहूँ बाम यही झक तेरे ।

(रहीम)

रहीम के दोहे

सर सूखे पंछी उड़ै औरे सरन समाहि ।
दीन मीन बिन पच्छ के कहु रहीम कहँ जाहि ॥ १ ॥
धूर धरत निज सीस पर कहु रहीम केहि काज ।
जेहि रज मुनि पत्नी तरी सो ढूंढत गजराज ॥ २ ॥
दीन सबन को लखत है दीनहि लखै न कोइ ।
जो रहीम दीनहि लखै दीन बन्धु सम होइ ॥ ३ ॥
राम न जाते हिरन संग सीय न रावन साथ ।
जो रहीम भावी कहे होत आपने हाथ ॥ ४ ॥

शीत हरत तम हरत नित भुवन भरत नहिं चूक।
रहिमन तिहि रवि को कहा जो घटि लखै उलूक ॥४७॥

नहिं रहीम कछु रूप गुन नहिं मृगया अनुराग।
देसी स्वान जु राखिये भ्रमत भूख ही लाग ॥४८॥

कागज कोसों पूतरा सहजहिं में घुर जाइ।
रहिमन यह अचरज लखो सोऊ खैंचत बाइ ॥४९॥

रहिमन कहि इक दीप ते प्रगट सबै द्युति होइ।
तनु सनेह कैसे दुरै दृग दीपक जरु दोइ ॥५०॥

जिहि रहिम चित आपनो कीन्हो चतुर चकोर।
निरि बासर लागो रहै कृष्णचन्द्र की ओर ॥५१॥

कहि रहीम धन बढ़ घटै जात धनिन की बात।
घटै बढ़ै उनको कहा घास बेचि जे खात ॥५२॥

जो रहीम होती कहूँ प्रभु गति अपने हाथ।
बा को यौं केहि मान तो आप बड़ाई साथ ॥५३॥

तिहि प्रमान चलिबो भलो जो सब दिन ठहराइ।
ज्यहि चले जल पारतें जो रहीम बढ़ि जाइ ॥५४॥

यों रहीम सुख दुख सहत बड़े लोग सह साँति।
उदत चन्द जेहि भाँति सों अथयत ताही भाँति ॥५५॥

कहि रहीम सम्पति सगे बनत बहुत बहुरीति।
विपति कसौटी जे कसे तेई साँचे मीत ॥५६॥

[illegible]

सबुध अबुध की सेन कौ यह सरूप जिय थाप ।
थल में रोपित कमल ज्यौं बधिर करन ज्यौं जाप ॥१०३॥
ऊँचे पद कौं पाय लघु होय तुरत ही पात ।
घन तैं गिरि पर गिरत जल गिरिहू तैं ढरि जात ॥१०४॥
बिना दिए न मिलै कछू यह समझौ सब कोय ।
होत सिसिर में पात तरु सुरभि सपल्लव होय ॥१०५॥
निसदिन खटकत तनक तृन परै जु आंखनि माहिं ।
तिनमैं सज्जन राखिए सो छिन खटकतु नाहिं ॥१०६॥
देखत कौ पै कछु नहीं मुख पै खल की प्रीति ।
मृग तृष्णा में होति है ज्यों जल की परतीति ॥१०७॥
उत्तम विद्या लीजियै जदपि नीच पै होय ।
पर्यो अपावन ठौर कौ कंचन तजत न कोय ॥१०८॥
प्रीति टुटैहू सज्जन के मन तैं हेत छुटै न ।
कमल नाल कौं तौरियै तदपि सूत टूटै न ॥१०९॥
प्रभु कौं चिंता सबन की आपु न करियै नाहिं ।
जनम अगाऊ भरत है दूध मात थन माहिं ॥११०॥
सेवक सोई जानियै रहै बिपति में संग ।
तन छाया ज्यौं धूप में रहै साथ इक रंग ॥१११॥
क्षमा खड्ग लीने रहै खल कौ कहा बसाय ।
अगिन परी तृन रहित थल आपहि तैं बुझि जाय ॥११२॥

यो निबाह सब जगत कौ रस रिस हेत अहेत ।
एक एक कै लेत है एक एक कौ देत ॥१२३॥
तन हूँ तैं अरु तूल तैं हरयौ जाचक आहि ।
जानतु है कछु माँगि है पवन उड़ायत नाहि ॥१२४॥
देखत है जग जातु है तउ ममता सौं मेल ।
जानतु हौ या जगत मैं देखत भूलौ खेल ॥१२५॥

ऐरावत गज गिरिपति हिम नग कण्ठहार कल ॥
सगर भुवन सठ सहस परस जलमात्र उधारन।
अगनित धारा रूप वारि सागर संचारन ॥
कासो कहँ प्रिय जानि ललकि भेट्यो जग धाई।
सपनेहूँ नहिं तजी रही अंकम लपटाई ॥
कहूँ बंधे नव घाट उच्च गिरिवर सम सोहत।
कहुँ छतरी कहुं मढी बढी मनमोहत जोहत ॥
धवल धाम कहुं ओर फहरत ध्वजा पताका।
घहरत घण्टा धुनि धमकत धौंसा करि साका ॥
मधुरी नौबत बजत कहूँ नारी नर गावत।
वेद पढ़त कहुँ द्विज कहुँ जोगी ध्यान लगावत ॥
कहुं सुन्दरी नहात नीर कर जुगल उघारत।
जुग कम्बुज मिलि मुक्त गुच्छ मनु मुक्त निकारत ॥
धोवत सुन्दरि बदन करन अति ही छवि पावत।
पारिधि नाते ससि कलंक मनु कमल मिटावत ॥
सुन्दरि ससि मुख नीर मध्य इमि सुन्दर सोहत।
कमल बेलि लहलही नवल कुसुमन मन मोहत ॥
दीठि जहाँ जहं जात रहत तितहीं ठहराई।
गंगा छवि हरिचन्द कछू बरनी नहिं जाई।

❀ ❀ ❀

कै जल उर हरि मूरति बसति वा प्रतिबिम्ब लखात है ॥५॥
कबहुँ होत सित चन्द कबहुं प्रगटत दुरि भाजत ।
पवन गवन बस बिम्बरूप जल में बहु साजत ॥
मनु ससि भरि अनुराग जमुन जल लोटत डोलै ।
कै तरङ्ग की डोर हिंडोरन करत कलोलै ॥
कै बाजगुडी नभ में उड़ी सोहत इत उत धावती ।
कै अवगाहत डोलत कोऊ ब्रज रमनी जल आवती ॥६॥
कूजत कहूँ कल हंस कहूँ मज्जत पारावत ।
कहुँ कारंडव उड़त कहूँ जलकुक्कुट धावत ॥
चक्रवाक कहुँ बसत कहूँ बक ध्यान लगावत ।
सुक पिक जल कहुँ पियत कहूँ भ्रमरावलि गावत ॥
कहुँ तट पर नाचत मोर बहु रोर बिबध पच्छी करत ।
जलयान न्हान करि सुख भरे तट सोभा सब जिय धरत ॥७॥
कहूँ बालुका बिमल सकल कोमल बहु छाई ।
उज्ज्वल झलकत रजत सिटी मनु सरस सुहाई ॥
पियके आगम हेत पांवडे मनहुँ बिछाये ।
रत्न रासि करि चूर फूल से मनु बगराये ॥
मनु सुख सांत सोभित भरो स्याम नीर चिकुरन परसि ।
सत गुन छाया कै नीर में ब्रज निवास लखि हिय हरसि ॥८॥

देशभक्त के आंसू

रोवहु सब मिलि के आवहु भारत भाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥
सब के पहिले जेहि ईश्वर धन बल दीनो॥
सब के पहिले जेहि सभ्य विधाता कीनो।
सब के पहिले जो रूप रङ्ग रस भीनो।
सब के पहिले विद्या फल जिन गहि लीनो॥
अब सब के पीछे सोई परत लखाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥१॥
जहँ भये शाक्य हरिचन्द्र नहुष ययाती।
जहँ राम युधिष्ठिर बासुदेव सर्याती॥

जहँ भीम करन अर्जुन की छटा दिखाती।
तहँ रही मूढ़ता कलह अविद्या राती॥
अब जहँ देखहु तहँ दुःखहि दुःख दिखाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥ २॥
लरि वैदिक जैन बुधाई पुस्तक सारी।
करि कलह बुलाई जवन सैन पुनि भारी।
तिन नासी बुधि बल विद्या धन बहु बारी।
छाई अब आलस कुमति कलह अँधियारी॥
भये अन्ध पङ्गु सब दीन हीन बिलखाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥ ३॥
अङ्गरेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन बिदेस चलि जात इहै अति ख्वारी॥
ताहू पै महँगी काल रोग बिस्तारी।
दिन दिन दूने दुख ईस देत हा हा री।
सब के ऊपर टिक्स की आफत आई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥ ४॥

रहे हमहुँ रवहुँ स्वाधीन आर्य बलधारी।
यह दैहैं जिय सो सब ही बात बिसारी॥
हरि बिमुख धरम बिनु धन बल हीन दुखारी।
आलसी मन्द तन छीन क्षुधित संसारी॥
सुख सो सहिहैं सिर यवन फटुका त्रासा।
अब उजहु बीरबर भारत की सब आसा॥५॥

* * *

जो दूजे को हित करै तो खोवे निज काज।
जो खोयो निज काज तो कौन बात को राज?
दूजे ही को हित करै तो यह परयस मूढ।
कठपुतरी सो स्वाद कछु पावै कबहुँ न मूढ॥३॥

गुरुवश्यता

ाव लौं बिगरै काज नहिं
तब लौं न गुरु बहु तेहि कहैं।
पै शिष्य जाइ बुराइ तौ
गुरु सोंस अंकुस ह्वै रहैं॥

तासों सदा गुरु-वाक्य-बस
तन नित्य पर-आधीन हैं।
निर्लोभ गुरु मे सन्त जन हो
जगत में स्वाधीन हैं॥

शारदी सुषमा

सरद बिमल ऋतु सोहई निरमल नील अकास।
निसानाथ पूरन उदित सोलह कला प्रकास॥
चाह चमेली बन रहि महमह महँकि सुबास।
नदी तीर फूले लखौ सेत सेत बहु कास॥
कमल कुमादिनि सरन में फूले सोभा देत।
भौंर वृन्द जामैं लखौ गूंजि गूंजि रस लेत॥
बसन चाँदनी, चन्द्रमुख, उडुगन मोती माल।
कास फूल मधुहास यह सरद किधौं नव बाल॥
अहा यह सरद सम्भु ह्वै आई।
कास फूल फूले चहूँ दिसि न साई मनु भस्म लगाई।

(बदरीनारायण चौधरी)

विजयी भारत

जय जय भारत भूमि भवानी ।
जाकी सुयश पताका जग के,
दसहुँ दिसि फहरानी ।
सब सुख सामग्री पूरित ऋतु,
सकल समान सोहानी ॥

जाकी सोभा लखि अलका अरु,
अमरावती खिसानी ।
धर्मसूर जिन उया नीति जहँ,
गई प्रथम पहिचानी ॥

जाकी सम्पति लुटत हजारन,
बरसन हूँ न खोटानी।
सहस सहस बरिसन दुख नित,
नव जो न ग्लानि उर आनी॥

धन्य धन्य पूरब सम जग,
नृप गन मन अजहुँ लोभानी।
प्रनमत तीस कोटि जन,
अजहूँ जाहि जोरि जुग पानी॥

जिनमैं झलक एकता की,
लखि जग मति सहमि सकानी।
ईस कृपा लहि बहुरि प्रेम घन
बनहु सोई छवि छानी॥

तोइ प्रताप गुनजन गर्वित ह्वै,
भरी पुरी धन धानी॥

(प्रतापनारायण मिश्र)

जनम के ठगिया

साधा मनुवां अजब दिवाना।
माया माह जनम के ठगिया,
तिनके रूप भुलाना।
छल परपंच करत जग धूनत,
दुख का सुख करि माना॥

फिकिर तहां की तनिक नहीं है,
अंत समय जहँ जाना।
मुख ते धरम धरम गोहरावत,
करम करत मन माना॥

जो साहब घट घट की जानै,
तेहि [illegible] करत बहाना ।
तेहि ते पूछत मारग घर को,
आपहि जौन भुलाना ॥

'हियाँ कहाँ सज्जन कर वासा',
हाय न इतनो जाना ।
यहि मनुवां के पीछे चलकै,
सुख का कहां ठिकाना ॥

जा परताप सुखद को चीन्हे,
साईं परम सयाना ॥

* * *

आगे जानें बनै सो कीजै,
करि तन मन ईक ठौरी।
कोऊ काहु को नहिं साथी,
मात पिता सुत गोरी॥
अपने करम आपने संगी,
और भावना भोरी।
सत्य सहायक स्वामि सुखद से,
लेहु प्रीति जिय जोरी॥
नाहु तु फिर 'परतापहरी',
कोऊ बात न पूछिहि तोरी॥

❀ ❀ ❀

विदुषी उपजैं क्षमता न तजैं,
व्रत धार तजैं सुकृति वर को।
सधवा सुधरें विधवा उबरें,
सकलंक करें न किसी घर को॥

दुहिता न बिकें कुटनी न टिकें,
कुल बोर छिकें तरसैं दर को।
दिन फेर पिता वर दे सविता,
करदे कविता कवि शंकर को॥२॥

नृपनीति जगे न अनीति ठगे,
भ्रमभूत लगे न प्रजाधर को।
झगड़े न मचें खल खर्व लचैं,
मद से न रचैं भट सगर को॥

सुरभी न कटे न अनाज घटे,
सुख भोग डटे टपट हर को।
दिन फेर पिता वर दे सविता,
कर दे कविता कवि शंकर को॥३॥

महिमा उमड़े लघुता न लड़े,
जड़ता जकड़े न चराचर को।
शठता सटके मुदिता मटके
प्रतिमा भटके न समादर को

विकसे विमला शुभ कमंड
पकड़े कमला श्रम के कर कं
दिन फेर पिता घर दे सवि
कर दे कविता कवि शंकर क

मत जाल अलें डलिया न डलें,
कुल फूल फलें सब मत्सर को।
अप-दम्भ दबें न प्रपञ्च फलें,
गुन मान नवें न निरक्षर को॥

सुमरे अघ से निरखें तप से,
सुर पादप से तुक अक्षर को।
दिन फेर पिता घर दे सविता,
कर दे कविता कवि शंकर को॥

❀ ❀ ❀

११

दरसे देश उदास, जाति अनुकूल नहीं है।
शत्रु करें उपहास, मित्र सुखमूल नहीं है॥
छूटे नातेदार किसी से मेल नहीं है।
घर में हा हा कार, खुशी का खेल नहीं है॥

१२

बालक चोखे खान पान पर अड़ जाते हैं।
खेल खिलौने देख पिछाड़ी पड़ जाते हैं॥
पर मनमानी वस्तु बिना बस रह जाते हैं।
हाय हमारे काढ़ कलेजे सो जाते हैं॥

१३

फूल फूल कर फूल फली फल खाने वाले।
नाना व्यञ्जन पाक प्रसादी पाने वाले॥
दूध रसाला आदि सुधारस पीने वाले।
हाय बने हम शाक चनों पर जीने वाले॥

१४

लड़के लकड़ी बीन बीन कर ला देते हैं।
ईंधन भर का काम अवश्य चला देते हैं॥
वृद्ध चचा दो तीन बार जल भर देते हैं।
मांग मांग कर छाछ महेरी भर देते हैं॥

[illegible] ध्यान यथाविधि मन्त्र जपे,
पढ़ वेद पुराण विचार चुके ।
गुरु गौरव धार महन्त बने,
धन धाम कुटुम्ब बिसार चुके ।
कवि 'शंकर' ज्ञान बिना न तरे,
सब आर फिरे झक मार चुके ॥२॥

निगमागम तन्त्र पुराण पढ़े,
प्रतिवाद प्रगल्भ कहाय खरे ।
रच दम्भ प्रपंच पसार घने,
बन वचक वेष अनेक धरे ।
विचरे कर पान प्रमाद सुरा,
अभिमान हलाहल खाय मरे ।
कवि 'शंकर' मोह महादधि से,
बकराज विवेक बिना न तरे ॥३॥

घर बार बिसार विरक्त बने,
ठनि वेष बनाय प्रमत्त रहे ।
बकवाद अबोध गृहस्थ सुने,
शठ शिष्य अनन्य सुजान कहे ।
घुस घोर घमंड महा बन में,
विचरै कुलबोर कुपंथ गहे ।

(श्रीधर पाठक)

उजड़ा गांव

कबहुँ न तहां पधारि ग्राम्य जन पग अब धरिहैं।
मधुर भुलौनी माहिं नित्य चिन्ताहि बिसरिहैं॥
ना किसान अब समाचार तहँ आय सुनैहैं।
ना नाऊ की बातैं सब को मन बहलैहैं॥
लकड़हार कौ बिरहा कबहुँ न तहँ सुनि परिहैं।
तान श्रवन आनन्द उदधि कबहूँ न उभरिहैं॥
मां धौ पोंछि लोहार काम को तहँ रुकिहैं ना।
भारी बलहि ढिलाय सुनन बातैं झुकिहैं ना॥

जादूभरी थैली

कै यह जादूभरी विश्व बाजीगर थैली।
खेलत में खुलि परी शैल के सिर पै फैली॥
पुरुष प्रकृति कौं किधौं जबै जोबनरस आयौ।
प्रेम केलि रस रेलि करन रंगमहल सजायौ॥
खिली प्रकृति पटरानी के महलन फुलवारी।
खुली धरी कै भरी तासु सिंगार पिटारी॥
प्रकृति यहां एकान्त बैठि निज रूप सँवारति।
पल पल पलटति भेस छनिक छवि छिन छिन धारति॥

स्वर्गीय वीणा

कहीं है स्वर्गीय कोई बाला,
सुमञ्जु वीणा बजा रही है।
सुरों के संगीत की सी कैसी,
सुरीली गुंजार आ रही है ॥१॥

हरेक स्वर में नवीनता है,
हरेक पद में प्रवीनता है।
निराली लय है औ लीनता है,
अलाप अद्भुत मिला रही है ॥२॥

अलक्ष्य पदों से गत सुनाती,
तरल तरानों से मन लुभाती।

अनूठे अटपट स्वरों में स्वर्गिक,
सुधा की धारा बहा रही है ॥३॥
कोई पुरन्दर की किंकरी है,
कि या किसी सुर की सुन्दरी है।
वियोग वामा सी भोग मुद्रा,
हृदय के उद्गार गा रही है ॥४॥
कभी नई तान समय है,
कभी प्रकोपन कभी विनय है।
दया है दाक्षिण्य का उदय है,
अनेकों थानक बना रही है ॥५॥
भरे गगन में हैं जितने तारे,
हुए हैं बदमस्त गत वे सारे।
समस्त ब्रह्माण्ड भर को मानों,
दो उंगलियों पर नचा रही है ॥
सुनो तो सुनने की शक्ति वालो,
सदा तो जाकर के कुछ पता लो।
है कौन जोगन ये जो गगन में,
कि इतनी चुलबुल मचा रही है ॥८॥

❀ ❀ ❀

कहुँ कहुँ कड़कि सुनावहु विज्जु पतन टनकार ।
कहुँ मृदु श्रवन करावहु झिल्लीगन झनकार ॥१६॥
घन घन कीट पतङ्गन घर घर तिय गन तान ।
पुरवहु रङ्ग विरङ्गन हे बहु ढङ्ग निधान ॥१७॥
करि कृतकृत्य किसानन सम्यक् सर सरसाउ ।
सींचि सस्य तृन धानन तब निज धाम सिधाउ ॥१८॥
समै समै पुनि आवहु पुनि जावहु इहि रीति ।
सहज सुभाग बढावहु गहि मग प्राकृत नीति ॥१९॥
प्रथित प्रेम रस पागहु पूरन प्रनय प्रतीत ।
सदा सरस अनुरागहु हे घन ! विनय विनीत ॥२०॥

दिग्दन्ती की द्विगुण दलक उठती छाती थी ॥
विशिखवृन्द से नभ मण्डल था पूरित होता।
जो था दश दिशि बीच बहाता शोणित सोता ॥
प्रलय घहि थी दहकती त्रिपुरान्तक थे कोपते।
जिस काल घोर सानिध्र थे रणभू में पग रोपते ॥११॥

अमर वृन्द जिसके भय से था थरथर कपता।
जो प्रचण्ड पूषण सा था रणभू में तपता ॥
पाहन द्वारा गठित हुई थी जिसकी काया।
विबध भयङ्कर मूर्तिमती थी जिसकी माया ॥
वह परम साहसी अति प्रबल मेघनाद सा रिपुदमन।
जिसके कोपानल में जला धन्य वह सुमित्रा सुअन ॥१२॥

कुण्ठितमति पौरुष विहीनता परवशता से।
वे न सियामति अनुगत थे स्वार्थपरता से ॥
वरन हृदय में भ्रातृभक्ति उनके थी न्यारी।
जिसने थी मोहिनी अपर भावों पर डारी ॥
उनके जीवन हिमगिरि शिख पर अमरावति से सजी।
राकारजनी चाँदनी सी स्नेह वीरता थी लसी ॥१३

वे वासर थे परम मनोहर दिव्य दरसने।

पूजा और घंटा

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

आंसू

दीन दुखियों के दुखी दिल के दुलारे आंसू।
प्रेमपथ पथी पियारों के पियारे आंसू॥
भय से भरपूर भरे नैनों के तारे आंसू।
भक्ति से भीजे हुए मान के वारे आंसू॥
आदि कवि जू के परम तुष्ट सहारे आंसू।
कौन कह सकता है महिमा तेरी खारे आंसू॥
शोक से भय से कभी चित्त जो घबराता है।
हर्ष से या कभी हरिभक्ति से भर आता है॥
तब तू लहरा के लपक आंखों में आजाता है।
दिल के सब भेद तुरत खोल के बतलाता है॥

२३

"जो आज्ञा" कहि नृपति हर्ष जुत सीस नवायो।
मंत्रिहिं अपर समस्त राजकाजिन्हि बुलवायो॥
सब सों सहित उछाह विदित वेगहि यह कीन्हो।
"हम सब राज समाज आज ऋषिराजहि दीन्हो"।

२४

वेगहिं उठि सिंहासन कों प्रनाम नृप कीन्हो।
रोहितास्व बालकहिं महिपि सैन्यहिं संग लीन्हो॥
चले राज तजि हर्ष विषाद न कछु उर आन्यो।
भूलि भाव सब और एक ऋण भजन ठान्यो॥

❀ ❀ ❀

(११)

विलग वारिधि ते न तरंग है।
पृथकता वरु मन्द विचारहीं ॥
लहर अंबुधि दोनहुं अम्बु हैं।
जगत ब्रह्ममयो तिमि जानिये ॥

(१२)

कनक के बरु कंकन किङ्किनी।
अमित आकृति के रचिये तऊ ॥
कनक तें नहीं अन्य कछू तथा।
सकल ब्रह्ममयो जग जानिये।

(१३)

भवन में मठ में घट में यथा।
गगन देखि अनेक परै तऊ ॥
विमल बुद्धिन को नभ एक है।
सबन में परमातम है तथा ॥

● ● ●

[illegible] होकर देख [illegible]
[illegible] है [illegible]।
[illegible] मार्ग [illegible] सदा,
[illegible] है [illegible] है [illegible] ॥

४—

[illegible] सहस्रगुणान्वित हैं यहाँ,
विविध शास्त्र विशारद हैं पढ़े।
हृदय! क्यों उनमें फिर एक दो,
सुकृत से कृत सेवक लोक हैं।

५—

[illegible] का मरना परिणाम है,
[illegible] न मिले फिर देह क्यों।
मन! बली विधि की करतूत से,
पतन का तन का चिर संग है॥

६—

मन! रमा रमणी रमणीयता,
मिल गई यदि ये विधि योग से।
पर जिसे न मिली कविता सुधा,
रसिकता सिकता सम है उसे॥

([illegible])

अन्योक्ति सुमन

१

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] में।
[illegible] में॥
[illegible] हो।
[illegible] हो॥

३

[illegible] होगा।
[illegible] होगा॥
[illegible] होगा।
[illegible] होगा॥
[illegible] है।
[illegible] है॥

४

[illegible] होंगे।
[illegible] होंगे॥
[illegible] होंगे।
[illegible] होंगे॥
[illegible] है।
[illegible] है॥

५

[illegible]।

(रामचन्द्र शुक्ल)

अछूत की आह

१—

एक दिन हम भी किसी के लाल थे,
आँख के तारे किसी के थे कभी।
बूँद भर निस्ता पसीना देख कर,
था बहा देता अरी लोहू कोई॥

२—

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

३—

जन्म के दिन फूल की थाली बजी,
दुःख की रातें कटीं सुख दिन हुआ।
प्यार से मुखड़ा हमारा चूम कर,
स्वर्गसुख पाने लगे माता पिता।

४—

हाय! हमने भी कुलीनों की तरह,
जन्म पाया प्यार से पाले गये।
जो बचे फूल फले तब क्या हुआ,
कीट से भी नाचतर माने गये॥

५—

जन्म पाया पूत हिन्दुस्तान में,
अन्न खाया और यहीं का जल पिया।
धर्म हिन्दू का हमें अभिमान है,
नित्य लेते नाम हैं भगवान का॥

६—

पर अजब इस लोक का व्यवहार है,
न्याय है संसार में जाता रहा।
स्थान छूना भी जिन्हें स्वीकार है,
है उन्हें भी हम अभागों से घृणा॥

७—

जिस गली से उच्च कुल वाले चलें,
उस तरफ चलना हमारा दण्ड्य है।
धर्म ग्रन्थों की व्यवस्था है यही,
या किसी कुलवान का पाखण्ड है॥

८—

हम अछूतों से बताते छूत हैं,
कर्म कोई खुद करें पर पूत हैं।
हैं सभों को ये पराया मानते,
क्या यही स्वामी तुम्हारे दूत हैं॥

९—

मानवों से मांगते अधिकार हैं,
पर नहीं अन्याय अपना छोड़ते।
प्यार का नाता पुराना तोड़ कर,
हैं नया नाता निराला जोड़ते॥

१०—

नाथ तुमने ही हमें पैदा किया,
रक्त मज्जा मांस भी तुमने दिया।
ज्ञान दे मानव बनाया फिर भला,
क्यों हमें ऐसा अपावन कर दिया॥

उपदेश

अप्रमेय को शब्द बांधि कै बताइये,
जो अथाह ताहि यों न बुद्धि सो थहाइये।
ताहि पूछि औ बताय लोग भूल ही करैं,
सो प्रसंग लाय व्यर्थ वाद माहि ते परैं॥१॥
अन्धकार आदि में रह्यो पुराण यों कहै,
वा महा निशा अखण्ड बीच ब्रह्म ही रहै।
फेर में न ब्रह्म के, न आदि के रहौ, अरे,
चर्मचक्षु को अगम्य और बुद्धि के परे॥२।
चलत तारे रहत पूछन जात यह सब नाहिं,
लेहु एतो जानि बस है चलत या जग माहिं।

१५

वह भीष्म का इन्द्रिय दमन उनकी धरा सो धीरता,
वह शील उनका और उनकी धीरता गंभीरता।
उनकी सरलता और उनकी वह विशाल विवेकता,
है एक जन के अनुकरण में सब गुणों की एकता।

❀ ❀ ❀

पञ्चवटी

१

चन्द्र की चंचल किरणें खेल रही हैं जल थल में,
स्वच्छ चांदनी बिछी हुई है अवनी और अम्बर तल में।
पुलक प्रकट करती है धरती हरित तृणों की नोकों से,
मानो झूम रहे हैं तरु भी मन्द पवन के झोंकों से॥

२

पञ्चवटी की छाया में है सुन्दर पर्णकुटीर बना,
जिसके सम्मुख स्वच्छ शिला पर धीर वीर निर्भीकमना।
जाग रहा यह कौन धनुर्धर जब कि भुवन भर सोता है,
भोगी कुसुमायुध योगी सा बना दृष्टिगत होता है।

कलियों का गन्ध लगाये।
आया फिर तू अलख जगाये॥
हट कर मैंने तुझे हटाया।
बार बार तू आया॥

आर्त गिरा कानों में आई,
वह थी तेरी आहट लाई,
पर मैं उस पर ध्यान न लाया,
बार बार तू आया॥

पीड़ित के निःश्वास अरे रे!
मैं क्या जानूँ कर थे तेरे!
तुझ पर माया मद था छाया,
बार बार तू आया॥

अब जो मैं पहचानूँ तुझको,
तो तू भूल गया है मुझ को,
मैं हूँ जिसने तुझे भुलाया।
बार बार तू आया,
पर मैंने पहचान न पाया॥

नर तनु है धारण किया करने को खिलवाड़।
कोई देख सका नहीं तिल की ओट पहाड़॥
अहङ्कार का हार डाल कल्पना के गले।
मायामय संसार बन बैठा मैं आपही॥

❀ ❀ ❀

तुलसीदास और रामायण

एकछत्र बन को अधिप पंचाननहीं एक।
गज शोणित सों आपहीं कियौ राज अभिषेक ॥ ४५ ॥
कांपतु कोपित केहरी मुहुँ बाये बिकराल।
रहै धंधकि अंगार कै प्रलयकाल के लाल ॥ ४६ ॥
छिन्न भिन्न ह्वै उड़ति क्यों मद भौंरनु की भीर।
दार्यो कुम्भ करीन्द्र कौ कहूँ केहरी बीर ॥ ४७ ॥
पराधीन सबु देखियतु बल बीरज तें हीन।
या कानन में केसरी! इक तूं हीं स्वाधीन ॥ ४८ ॥
जा तनु बारिधि में सदा खेलति अतनु तरंग।
उमगैगी क्योंकरि कहौ ता मधि युद्ध उमंग ॥ ४९ ॥
होति लाख में एक कहूँ, अनल बर्न वह आंख।
देखत ही दहि करति जो दुवनदीह दलु राख ॥ ५० ॥
सुभट मयन अंगारु पै अचरजु एकु लखातु।
ज्यौं ज्यौं परतु उमाह जलु त्यौं त्यौं धंधकत जातु ॥ ५१ ॥
जाव फूटि रति रंगरली अलसौंहीं वह आंख।
सहज ओज ज्वाला ज्वलित चिर जीवौ जुग लाख ॥ ५२ ॥
सुरत रंग कहँ दृगनि में कहँ रण ओज उदोतु।
यातें उज्ज्वल होतु मुखु वातें कज्जल होतु ॥ ५३ ॥
बसति आपु लघु स्थान में वह कृपान लघुगात।
त्रिभुवन में न समातु पै सुजसु तासु अवदात ॥ ५४ ॥

कह्यौ माय मुख चूमिकैं कर गहाय करवाल।
जनि लजाइयौ दूध मो पयोधरनु कौ लाल ॥ ६५ ॥
चूर चूर ह्वै अन्त लौं रखियौ कुल की लाज।
जननि दूध पितु खड्ग की अहै परिच्छा आज ॥ ६६ ॥
लोटि लोटि जापै भये धूरि धूसरित आज।
वत्स तुम्हारे हाथ है ता धरनी की लाज ॥ ६७ ॥
मिलतु न पत्रा में सुदिनु भिरत न कादर मन्द।
नहिं सोधत रणबांकुरे नखत बार तिथि चन्द ॥ ६८ ॥
रहिहौं अस्त्र गहाय हरि रखि निज प्रण की लाज।
कै अब भीषम ही यहां कै तुमहीं यदुराज ॥ ६९ ॥
इत पारथ रथ सारथी उत भीषम रण धीर।
तिलहू नहिं टारे टरै दुहँ वज्र प्रण वीर ॥ ७० ॥
भानु अस्त लौं आजु जौ बच्यौ जयद्रथ जीव।
चिता लाय तनु जारि हौं तोर तोर गाण्डीव ॥ ७१ ॥
लै न सक्यौ हरि ! आजु जौ अधम जयद्रथ जीव।
तौ पारथ हौं क्लीव अब नहि लैहौं गाण्डीव ॥ ७२ ॥
मूंछ न तौ लौं ऐंठिहौं हौं प्रताप पुंज हीन।
करि पायो जौ लौं न मैं गढ़ चितौर स्वाधीन ॥ ७३ ॥
महल नाहिं पगु धारिहौं रहिहौं कुटी छवाय।
हौं प्रताप जौ लौं न ध्वज दई फेरि फहराय ॥ ७४ ॥

धूप रवि आतप तपि कृषक,मरत फलपि विनु नीर ।
इत लेपत तुम अरगजैं, विरमि उसीर कुटीर ॥ १०५ ॥
उत हाकिम रैयत रकत, करत पान उर चीर ।
इत पीवत तैं मद झरे ! नृपति मनोज अधीर ॥ १०६ ॥
लखि जिनके मजबूत भुज, कांपत हैं यमदूत ।
भारत भू पै अब कहां वै बांके रजपूत ॥ १०७ ॥
रे निलज्ज ! जिनके अद्भुत, अरिहिं झुकायौ माथ ।
अब तिन मूँछन पै कहा पुनि पुनि फेरत हाथ ॥ १०८॥
कहं प्रताप कहं दाप वह, कहां आन कहं बान ।
कहां गेड़ वह मेंड़ अब, हैं सब सूखी शान ॥ १०९ ॥
अब कोयल ! वह ऋतु कहां,कहं कूजन तरु डार ।
वह रसाल रस बौर कहँ,वह बन बिहग बिहार ॥ ११० ॥
डूबै है पुनि स्वार्थान तुम सदा न रहिहौ दास ।
या युग के बलिदान को लिखियौ तब इतिहास ॥ १११ ॥
आजु कालि कबतें करत, भये न कबहूँ तयार ।
घलाघली उत डूबै रही, इत मांजत हथियार ॥ ११२ ॥
भूलेहूँ कबहुँ न जाइये, देस बिमुख जन पास ।
देस विरोधी संगतें, भलो नरक को बास ॥ ११३ ॥
तन कारो कारो कुदिन, कारो कुल गृह गोत ।
पै कुरूप बारेनु को, हियो न कारा होत ॥ ११४ ॥

मैं था विरक्त तुझ से जग की अनित्यता पर।
क्रन्दन भर रहा था तब तू किसी पतन में॥
बेदम गिरे हुओं के तू बीच में खड़ा था।
मैं स्वर्ग देखता था झुकता रहा चरन में॥
तू ने दिये अनेकों अवसर न मिल सका मैं।
तू कर्म में मगन था मैं मस्त था कथन में॥
हरिश्चंद्र और ध्रुव ने कुछ और ही बनाया।
मैं तो समझ रहा था तेरा प्रताप धन में॥
मैं सोचता तुझे था रावण की लालसा में।
पर था दधीचि के तू परमार्थ रूप तन में॥
तेरा पता सिकन्दर को मैं समझ रहा था।
पर तू बसा हुआ था फरहाद कोहकन में॥
कीसस की हाय में था करता विनोद तू ही।
तू अन्त में हँसा था महमूद के रुदन में॥
प्रह्लाद जानता था तेरा सही ठिकाना।
तू हो मचल रहा था मसूर की रटन में॥
आखिर चमक पड़ा तू गाँधी की हड्डियों में
मैं था तुझे समझता सुहराब पील तन में॥
कैसे तुझे मिलूंगा जब भेद इस कदर है।
हैरान हो के भगवन्! आया हूँ मैं सरन में॥

तू रूप है किरन में सौंदर्य सुमन में।
तू प्राण है पवन में विस्तार है गगन में॥
तू ज्ञान हिन्दुओं में ईमान मुस्लिमों में।
तू प्रेम क्रिश्चियन में है सत्य तू सुजन में॥
हे दीनबन्धु! ऐसी प्रतिभा प्रदान कर तू।
देखूँ तुझे दृगों में मन में तथा वचन में॥
कटिनाइयों दुखों का इतिहास ही सुयश है।
मुझ को समर्थ कर तू उस कष्ट के सहन में॥
दुख में न हार मानूँ सुख में तुझे न भूलूँ।
ऐसा प्रभाव भर दे मेरे अधीर मन में॥

है छिपा जो मर्म उसका, समझते,
किन्तु तो भी हैं उसी के ध्यान में ॥
आह ! कितने विकल जन मन मिल चुके,
खिल चुके कितने हृदय हैं हिल चुके,
तप चुके वे प्रिय व्यथा की आंच में,
दुःख उन अनुरागियों के झिल चुके ॥
क्यों हमारे ही लिये वे मौन हैं ?
पथिक ! वे कोमल कुसुम हैं कौन हैं ?

* * *

मुक्त हृदय के सिंहासन पर
किस अतीत के वे सम्राट
दीप रहे जिन के मस्तक पर
रवि शशि तारे विश्व विराट ?

* *

[illegible]

(३)

[illegible]

(४)

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

(५)

तृप्ति वह तृष्णा की अविकृत—
स्वर्ग आशाओं की अभिराम—
क्रान्ति की सरल मूर्ति निद्रित—
गरल की अमृत अमृत की ऋण—
रेणु सी किस दिगन्त में लीन ?
वेणु ध्वनि सी न शरीराधीन ।

तुम और मैं

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

तुम योग और मैं सिद्धि ।
तुम हो रागानुग निश्छल तप,
मैं शुचिता सरल समृद्धि ॥

(२)

तुम मृदुमानस के भाव और मैं मनोरञ्जिनी माया ।
तुम नन्दन वन घन विटप और मैं सुख शीतल तल छाया ॥
तुम प्राण और मैं काया ।
तुम शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म,
मैं मनोमोहनी माया ।
तुम प्रेममयी के कंठहार मैं वेणी काल नागिनी ।
तुम कर पल्लव झंकृत सितार मैं व्याकुल विरह रागिनी ॥
तुम पथ हो मैं हूँ रेणु ।
तुम हो राधा के मनमोहन,
मैं उन अधरों की वेणु ॥

(३)

तुम पथिक दूर के श्रान्त और मैं बाट जोहती आशा ।
तुम भव सागर दुस्तार पार जाने की मैं अभिलाषा ॥
तुम नभ हो मैं नीलिमा ।
तुम शरद सुधाकर कला हास,
मैं हूँ निशीथ मधुरिमा ॥

[illegible]

[illegible]

[illegible]

तुम योग और मैं सिद्धि ।
तुम हो रागानुग निश्छल तप,
मैं शुचिता सरल समृद्धि ॥

(२)

तुम मृदुमानस के भाव और मैं मनोरंजिनी भाषा ।
तुम नन्दन वन घन विटप और मैं सुख शीतल सुख शाखा ॥
तुम प्राण और मैं काया ।
तुम शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म,
मैं मनोमोहनी माया ।
तुम प्रेममयी के कण्ठहार मैं वेणी फाल नागिनी ।
तुम कर पल्लव झंकृत सितार मैं व्याकुल विरह रागिनी ॥
तुम पथ हो मैं हूँ रेणु ।
तुम हो राधा के मनमोहन,
मैं उन अधरों की वेणु ॥

(३)

तुम पथिक दूर के श्रान्त और मैं बाट जोहती आशा ।
तुम भव सागर दुस्तार पार जाने की मैं अभिलाषा ॥
तुम नभ हो मैं नीलिमा ।
तुम शरद सुधाकर कला हास,
मैं हूँ निशीथ मधुरिमा ॥

तुम गन्ध कुसुम कोमल पराग मैं मृदुगति मलय समीर।
तुम स्वेच्छाचारी मुक्त पुरुष मैं प्रकृति प्रेम जंजीर॥
तुम शिव हो मैं हूँ शक्ति।
तुम रघुकुल गौरव रामचन्द्र,
मैं सीता अचला भक्ति॥

(४)

तुम आशा के मधुमास और मैं पिक कल कूजन तान।
तुम मदन पंच शर हस्त और मैं हूँ मुग्धा अनजान॥
तुम अम्बर मैं दिग्वसना।
तुम चित्रकार घन पटल श्याम,
मैं तड़ित् तूलिका रचना॥
तुम रण ताण्डव उन्माद नृत्य मैं मुखर मधुर नूपुर-ध्वनि,
तुम नाद वेद ओंकार सार मैं कवि शृंगार शिरोमणि॥
तुम यश हो मैं हूँ प्राप्ति।
तुम कुन्द इन्दु अरविन्द शुभ्र
तो मैं हूँ निर्मल व्याप्ति॥

(सुमित्रानन्दन पन्त)

छाया

(१)

कहो कौन दमयन्ती सी
तुम [redacted] के नीचे सोई ?
हाय ! तुम्हें भी त्याग गया क्या
अलि ! नल सा निष्ठुर कोई ?

नीले पत्ते की शय्या पर
तुम विरक्ति सी मूर्छा सी
विजन विपिन में कौन पड़ी हो
विरहमलिन दुम्न विधुर सी ?

(२)

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]

(३)

[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]

(सुमित्रानन्दन पन्त)

छाया

(१)

कहो कौन दमयन्ती सी
सुम तरु के नीचे सोई ?
हाय ! तुम्हें भी त्याग गया क्या
अलि ! नल सा निष्ठुर कोई ?

नीले पत्तों की शय्या पर
तुम विरक्ति सी मूर्छा सी
विजन विपिन में कौन पड़ी हो
विरहमलिन दुख बिधुरा सी ?

मुसकान

कहेंगे क्या तुझ से सब लोग
कभी आता है इसका ध्यान
रोकने पर भी ओ सखि हाय
नहीं रुकती है यह मुसकान

विविध में पावस के से दीप
सुवासित महसा सौ सौ भाव
सजग हो हटते निज उर बीच
नहीं रख सकती तनिक दुराव
बन्दना के ये शिशु नादान
हँसा देते हैं मुझे निदान

अचगरि—नटखटी
समसील—सम स्वभाव
जुड़ाने—ठण्डे हुए।
कान-नाहीं = यह दुध मुहां नहीं इसके मुँह में काल कूट विष है।
बैठिब-पिराने = खड़े खड़े पांव दुखने लगे होंगे।
मष्टकरहु—बस चुप करो
नयन तरेरे—आंखों से डाटा
अनैसे—टेढ़ा

पृष्ठ ९

बहइ न हाथू—हाथ नहीं चलता
गर्भ-घोर = इस कुठार की भयङ्कर गति को सुनते ही राजाओं की स्त्रियों के गर्भ गिर जाते हैं।
बाउ-कृपा = बाहरी कृपा। जैसी कृपा वैसी ही आपकी मूर्ति है।
करहु किन—क्यों नहीं करते

पृष्ठ १०

गुनहु-लषन कर = अपराध तो लक्ष्मण का और क्रोध हम पर। क्या कहीं सीधेपने से भी बड़ा कोई दोष है।

सरवर—बराबरी
देव एक-तुम्हारे = देव! हमारा तो धनुष ही एक गुण है पर आप के परम पवित्र नौ गुण हैं। (नौ गुण शम, दम, तप शौच, सन्तोष, ऋजुता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता) अथवा हमें तो एक चाप वाले धनुष मात्र का बल है। पर आप को ९ तार वाले यज्ञोपवीत का बल है। अथवा हमारा धनुष तो एक-गुण है (शत्रुवध) आप का यज्ञोपवीत नौ गुणवाला है। नौ का गुण ऐसा है कि १ से गुणे तो ९, २ से गुणे तो १८। ९ के गुण में ९ ही बने रहते हैं। सारांश यह कि आप कुछ भी कैसा ही करें, मेरा तेज के आगे सब ज्यों का त्यों है।

पृष्ठ ११

चतुरंग—चतुरंगिणी, रथ, हाथी,

विशुद्ध ब्रह्म से किसी प्रकार की सहायता न पाकर त्रस्त हुआ समाज अनीश्वरवाद के गर्त में गिरा ही चाहता था कि बनारस के स्वामी रामानन्द ने (रामानुज के सगुणोपासनात्मक भक्तिसम्प्रदाय का आश्रय लेते हुए) सगुण भक्ति का उपदेश दे उसे पतन से बचाया। रामानन्द की शिष्य परम्परा में एक ओर कबीर हुए, जिन्हों ने ज्ञानाश्रयी भक्ति शाखा का उपदेश देकर नवीन सम्प्रदाय खड़ा किया और दूसरी ओर तुलसीदास हुए जिन्होंने रामभक्ति का उपदेश दे जनता को संग्रहविग्रहात्मक उपदेश की ओर चलाया।

कबीर ने क्या किया ?

(१) हिन्दू जाति धर्मप्राण है। इस्लाम धर्मप्रेमी है। दोनो जाति धर्म के नाम पर एक दूसरे का संहार कर रही थीं। हिन्दुओं के धर्म का आधार परमात्मा है और मुसलमानों के धर्म का आधार खुदा। कबीर ने परमात्मा और खुदा की सत्ता का एकत्व बता हिन्दू और मुसलमानों को एक करने का स्तुत्य प्रयत्न किया।

(२) विभिन्नतीन ऐक्य के मार्ग में प्रबलतम विघ्न हिन्दुओं की वर्णव्यवस्था थी। हिन्दू समाज में वैदिक काल से दो शक्तियां काम करती आ रही थीं। पहली संकोचात्मक अर्थात् ब्राह्मण, जो लोक संग्रह की ओर अधिक ध्यान देते हुए वैदिक मन्तव्यों को परिमित केन्द्र तक सीमित रखना चाहते थे और दूसरी विकासात्मक अर्थात् क्षत्रिय जो विभिन्नता में ऐक्य की ओर अधिक ध्यान देते हुए वैदिक सिद्धान्तों का नया प्रचार करना चाहते थे, और इस प्रकार वर्णव्यवस्था को तोड़ने की प्रेरणा